

ओ३म्

श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

वैदिक विचार माला का पुष्प संख्या - २

सुकर्म

लेखक

वैदिक मिशनरी कमलेशकुमार आर्य अग्निहोत्री

प्रकाशक

श्री चुनीलालभाई रूपसीभाई पोपट

प्लॉट नम्बर ६५/६६, वार्ड १० बी.सी. इपको कॉलोनी के सामने,

आर्यसमाज मार्ग, गांधीधाम-कच्छ ३७०२०१

कृपया : यह पुस्तिका आप स्वयं आद्योपान्त पढ़िये और

अन्य अधिकाधिक व्यक्तियोंको भी अवश्य पढ़वाइये ।

पुनरावर्तन

सरल भाषा और मण्डनात्मक शैली में विभिन्न विषयों पर मेरे द्वारा लिखित १०१ पुस्तकें १३ मार्च १९६७ को निर्मित “वैदिक लेखमाला प्रकाशक न्यास” मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान) की ओर से बारम्बार प्रकाशित और भारतवर्ष के अनेकानेक नगरों - ग्रामों तथा कुछ बाहर के देशों में निःशुल्क प्रेषित एवं वितरित की गईं उन्हें सर्व कल्याणकारी सत्य सनातन वैदिकधर्म प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी माना गया । यह जानकारी प्रबुद्ध पाठकों से प्राप्त कर मैं अति उत्साहित हुआ, किन्तु कतिपय कारणों से इस ‘न्यास’ का समन्वय २ मई २००८ को विश्व प्रसिद्ध “पतञ्जलि योगपीठ हरिद्वार न्यास” में कर दिया गया । तब सम्बन्धित सत्साहित्यप्रेमियों को बहुत निराशा हुई । तत्पश्चात् -

५ से ६ जनवरी २०११ तक गुजरात प्रान्त के बनासकांठान्तर्गत भाभर नामक कस्बे में सम्पन्न हुए ‘यजुर्वेद पारायण बृहद् यज्ञ’ के अवसर पर मैं प्रचारार्थ रहा । तब वहाँ के निवासी आर्यश्रेष्ठी श्री अशोकभाई चुनीलालभाई पोपट ने अपने श्री पूज्य दादा जी रूपसीभाई करमणभाई पोपट की पुण्यस्मृति में उन पुस्तकों के प्रकाशन और विभिन्न स्थानों पर प्रेषित करने का व्यय भार स्वीकारते हुए उन्हें “वैदिक विचार माला” के नाम से पुनः प्रकाशित करवाते रहने की इच्छा व्यक्त की । अतः मैंने उन पुस्तकों का प्रकाशन कार्य आरम्भ करवा दिया है, जिनको पढ़ कर अनेकों नर नारी आचारण से वैदिकधर्मानुयायी बने, यह सम्बन्धित महानुभाव भलीभाँति जानते हैं ।

स्वाध्यायप्रेमी सज्जनो ! आपको यह विदित ही है कि आज की अधिक व्यस्ततावाले इस युग में अधिकांश व्यक्ति बड़ी पुस्तकों को पढ़ने के लिये समय नहीं निकाल पाते और क्लिष्ट भाषा हो तो उसे समझ नहीं पाते । ऐसी स्थिति में ये सरल भाषा में लिखी लघु पुस्तिकाएँ अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं, और होती रहेंगी । मैं हृदय से चाहता हूँ कि ये ‘वैदिक विचार माला’ के पुष्प अधिकाधिक हाथों में पहुँचे, जिससे कि धर्म अध्यात्म तथा कर्मकाण्ड आदि से सम्बन्धित व्यात भ्रान्तियों का निवारण हो । मेरे अपने विश्वास के अनुसार इन पुस्तिकाओं को पढ़कर अनेकानेक स्त्री-पुरुष शाश्वत वेदपथ के पथिक अवश्य बनेंगे ।

यह पुस्तक निःशुल्क हम अपने डाक व्यय से आपके पते पर प्रेषित कर रहे हैं । इसे आद्योपान्त पढ़कर आप अपने विचारों से हमें अवगत कीजियेगा । आपके पत्र प्राप्त होते रहेंगे तो आगामी पुष्प भी हम आपको निःशुल्क सादर समर्पित करते रहेंगे -

लेखक

सुकर्म

अपने चिन्तन के आधार पर जहाँ तक मैं जान पाया हूँ उसके अनुसार आवागमन के चक्र में पड़े सभी जीव (प्रभाव, परिणाम, फलदायक) कर्मों से सम्बद्ध हैं। अर्थात् कोई भी प्राणी कर्म करने से वञ्चित नहीं रहता, किन्तु सुकर्म अथवा दुष्कर्म का सम्बन्ध केवल मानव देहधारी जीवों के साथ ही होता है। अन्य योनियों में रह रहे जीव तो मात्र कर्म करते हैं, सुकर्म अथवा दुष्कर्म नहीं, क्योंकि उन्हें भले-बुरे कर्मों का ज्ञान नहीं होता।

मानव तन में रहते हुए हम जीव जो कर्म करते हैं उनका ही फल हमें कालान्तर अथवा जन्मान्तर में भोगना पड़ता है। अर्थात् अपने कृतकर्मों के फलस्वरूप ही हम जीव विभिन्न योनियों में रहकर सुख-दुःख भोगते तथा प्रकृतिपाश से मुक्त होकर मोक्ष की अवधि पर्यन्त ईश्वर के आनन्द में निमग्न रहते हैं।

शास्त्रकारों के कथनानुसार समस्त जीव स्वभाव से मुक्त तथा सुखी रहना चाहते हैं, बन्धन एवं दुःख कोई भी जीव नहीं चाहता, और मोक्ष अथवा सांसारिक सुख-सुकर्मों का फल है। अतः हम कर्म प्रधान मानव योनि वाले जीवों के लिये सदैव सुकर्म करना अति आवश्यक है। किन्तु मैं देखता हूँ, आज वेद विरुद्ध मत-मतान्तरों से सम्बन्धित अधिकांश व्यक्तियों को सुकर्मों की यथावत् जानकारी न होने के कारण वे अपने जीवन का पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं कर पाते।

वैदिक मान्यतानुसार सुकर्म क्या है ? यह बताने से पूर्व कर्म सम्बन्धी इस भ्रान्ति का निवारण करना मैं आवश्यक समझता हूँ कि 'कलियुग' के प्रभाव से मनुष्य दुष्कर्म करते हैं। जो ऐसा मानते हैं उनके स्वीकार्य ग्रन्थों में लिखा है कि हिरण्यकश्यपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को भयंकर यातनाएँ इसलिये दी कि वह ईश्वर का गुणगान करता था। यदि यह घटना सत्य है तो मैं कहूँगा - उस 'सतयुग' से तो वर्तमान का कलियुग बहुत अच्छा है, जिसमें परमेश्वर का नाम लेने पर किसी को दण्डित नहीं किया जाता।

'त्रेतायुग' का इतिहास साक्षी है - उस समय के असुर ऋषि-मुनियों को यज्ञ नहीं करने देते थे। जबकि आज के असुर यज्ञकर्ताओं को कभी परेशान नहीं करते। अतः त्रेतायुग से तो यह कलियुग उत्तम है, जिसमें दैनिक हवन से बृहदयज्ञ तक बिना किसी बाधा के सपन्न हो रहे हैं।

जिसने अपनी धर्मपत्नी तक को दाँव पर लगा दिया ऐसे जुआरी राजा युधिष्ठिर को धर्मराज माना गया। उस 'द्वापरयुग' से तो आज का कलियुग अतिश्रेष्ठ है, जिसमें जुआं खेलने वाले वैधानिक दृष्टि से अपराधी माने जाते हैं तथा कहीं सम्मान नहीं पाते। इत्यादि... अतः यह मानना तथा कहना उचित नहीं

है कि कलियुग के प्रभाव से मनुष्य दुष्कर्म करते हैं। सुकर्म एवं दुष्कर्म का सम्बन्ध तो जन्म-जन्मातरो के सञ्चित संस्कारों और मान्यताओं से है, किसी युग विशेष से नहीं। मेरे अपने विश्वास के अनुसार आदिसृष्टि से ही सुकर्मी तथा दुष्कर्मी मनुष्य संसार में रहते आये हैं, और प्रलय पर्यन्त रहेंगे। संख्या की दृष्टि से सुकर्मीयों एवं दुष्कर्मीयों की न्यूनाधिकता रही तथा रहेगी।

प्रातःमध्याह्न, सायं, रात्रि आदि समय के नामों की भाँति-सत, त्रेता, द्वापर, कलि तो युगों के नाम हैं। इनका सुकर्म-दुष्कर्म से कोई सम्बन्ध नहीं होता। सुकर्म अथवा दुष्कर्म किसी भी समय किसी भी युग में किये जा सकते हैं। यह तो हम जीवात्माओं पर निर्भर है कि कब क्या करें, क्योंकि कर्म करने में स्वतन्त्र सभी जीव अपनी इच्छा एवं शक्ति सुविधानुसार किसी भी समय कोई भी कर्म कर सकते हैं।

मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि देव-असुर, आर्य-अनार्य, मानव-दानव आदि की पृथक् से कोई योनि अथवा नस्ल नहीं हुआ करती। ये तो भौगोलिक स्तर पर समुदायों एवं आध्यात्मिक दृष्टि से वृत्तियों के नाम हैं। वैदिक परम्परा में सुकर्मी मनुष्य देव, आर्य, मानव तथा दुष्कर्मी व्यक्ति असुर, अनार्य दानव माने जाते हैं। अमूल्य मानव जीवन को सुकर्मी ही सार्थक कर पाते हैं, दुष्कर्मी नहीं। इस मान्यता से सम्बन्धित वेदानुकूल आचरण वाले मनीषी विद्वान् कहते हैं -

ईश्वरोपासना सुकर्म है

हम जीवात्माओं को ईश्वरोपासना करने का अवसर केवल मानव तन में ही प्राप्त होता है, और किन्हीं अन्य योनियों में नहीं। इसलिये अध्यात्म प्रेमीजन प्रत्येक मनुष्य के लिये ईश्वरोपासना अनिवार्य मानते हैं। यह तन-मन को स्वस्थ तथा सुखी बनाने एवं आत्मा को प्रकृतिपाश से मुक्त कराने वाला सुकर्म है। क्योंकि जो विधिवत् ईश्वरोपासना करते हैं वे किसी के प्रति वैर भावना नहीं रखते। सत्य बोलते, चोरी नहीं करते, संयम से रहते, अपरिग्रही होते, तन-मन-वस्त्र स्थान आदि की शुद्धि का ध्यान रखते। भूख-प्यास, हानि-लाभ आदि द्वन्द्व सह लेते, आर्ष-ग्रन्थों का स्वाध्याय एवं अपने जीवन व्यवहार-आचरण का सूक्ष्मता से अध्ययन करते, ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना रखते। सुखासन स्वस्तिकासन सिद्धासन पद्मासनादि से सुस्थिर होकर बैठते और विधिवत् प्राणायाम करते। इन्द्रिय सुखों को प्राथमिकता नहीं देते, अपने मन को एकाग्र एवं पञ्च विषयों के आकर्षण से मुक्त रखते तथा अन्तःकरण पर अंकित जन्म-जन्मातरो के अशुभ संस्कारों को दग्धबीज करने हेतु निरन्तर यत्नशील रहते। अतः निश्चय ही मानसिक तनाव तथा शारीरिक रोगों से बचते हुए परमानन्द पा लेते हैं।

वेद विरुद्ध मत-मतान्तरों द्वारा प्रचलित ईश्वरोपासना के विभिन्न प्रकार तन-मन-आत्मा के लिये कितने उपयोगी और हितकारी हैं- यह तो सम्बन्धित व्यक्तियों के जीवन व्यवहार से जाना जा सकता है, किन्तु महर्षि दयानन्द के निर्देशानुसार नित्यप्रति वैदिक सन्ध्या विधिवत् करने वाले उपासक शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अवश्य ही लाभान्वित होते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, मैं यह अपने अनुभव के आधार पर लिख रहा हूँ ।

मेरे विचार से सन्ध्या के मन्त्रों का पाठ कर लेने मात्र से यथेष्ट लाभ नहीं हो पाता । मैं जितना जान पाया हूँ उसके अनुसार प्रतिदिन नियमित रूप से प्रातः सायं शरीर सम्बन्धी कार्यों से निवृत्त होकर सुखासन से बैठ जाता हूँ और तीन बार धीमे स्वर में गायत्री मन्त्र बोलकर बाह्य विषय (रेचक) तथा आभ्यन्तर (पूरक) तीन प्राणायाम करता हूँ । तत्पश्चात् आचमन, इन्द्रियस्पर्श मार्जन करके पेट को भीतर की ओर ले जाते हुए नासिका से श्वास बाहर निकाल कर रोक देता हूँ, और फिर पेट ढीला छोड़कर श्वास को धीरे धीरे भीतर भर कर रोकता हूँ । ऐसा २१ बार करता फिर श्वास को जहाँ का तहाँ रोकने वाला स्तम्भवृत्ति एवं श्वास बाहर निकालकर और बाहर निकालने तथा भीतर भर कर और भीतर भरने वाला बाह्यन्तराक्षेपी प्राणायाम तीन बार करता हूँ । प्राणायाम करते समय ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यम् मन में बोलता रहता हूँ ।

अघमर्षण, मनसापरिक्रमा, उपस्थान, नमस्कार के मन्त्रों का मानसिक पाठ करके ओ३म् का जप एवं गायत्री मन्त्र का अर्थ सहित चिन्तन करता हूँ । साधना के समय भृकुटि में मन लगाकर सांसारिक विचारों को रोकता हूँ, ऐसा करने से मुझे सुखद अनुभूति होती है ।

ऋषियों द्वारा रचित अध्यात्म सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रमाण देकर ईश्वरोपासना की उपयोगिता, अनिवार्यता, एवं उपलब्धियाँ बताने वालों को तत्सम्बन्धी अपने निजी अनुभव की भी जानकारी देनी चाहिए, यह मानकर मैं लिख रहा हूँ ।

२६ जुलाई १९६२ को आर्यसमाज मन्दिर गाँधीधाम-कच्छ में आध्यात्मिक प्रवचन सुनने आये श्री रजनीश जी के विचारों से प्रभावित एक युवक ने मुझसे पूछा क्या आपको सन्ध्योपासना करते समय सुखद अनुभूति होती है ? तो मैंने कहा - हाँ ।

पाठकवृन्द मेरे इस कथन में अहंकार नहीं स्वाभाविकता मानें । मेरी दृष्टि में यथार्थ कहना अनुचित नहीं है । यदि किसी को विश्वास न हो तो वैदिकविधि से ज्ञानपूर्वक ईश्वरोपासना करके देख लेवें, सुखद अनुभूति अवश्य होगी । स्मरण रहे ! उपासक के हृदय में ईश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा, अनन्य भक्ति भावना तथा पूर्ण विश्वास होना अति आवश्यक है । सन्ध्या के नाम पर केवल औपचारिकता निभाने से कोई लाभ नहीं होता ।

ईश्वरोपासना की अनुभूत उपलब्धियाँ

शरीर निरोग रहता है, मन में अशुभ विचार नहीं आते, इन्द्रियों पर नियन्त्रण हो जाता है। विषय सुखों की इच्छा नहीं होती, मृत्यु का भय नहीं सताता, स्पष्ट बोलने तथा लिखने में तनिक भी संकोच नहीं होता। बुद्धि एवं स्मृति उत्तम हो जाती है, काम-क्रोध-लोभ मोहादि मर्यादित रहते, मन-वचन-कर्म में समानता आ जाती एवं जन्म-जन्मान्तरों के अशुभ संस्कार नष्ट होते हैं। ईश्वरोपासक देश, काल, परिस्थिति के अनुसार यथायोग्य कार्य व्यवहार करते हुए अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हैं। इत्यादि... इसके अतिरिक्त और क्या होता है यह मैं नहीं जानता, इतना और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उपासकों को सदैव सतर्क तथा सावधान रहना अति आवश्यक है। क्योंकि जब तक सभी अशुभ संस्कार दग्धबीज नहीं हो जाते तब तक पतन की सम्भावना बनी रहती है।

देवयज्ञ-अग्निहोत्र-सुकर्म है

वायु का प्रदूषण दूर करने में अत्यन्त सहायक, प्राणीमात्र के लिये विशेष सुखदायी हवन की महत्ता एवं उपयोगिता पर प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को ध्यान अवश्य देना चाहिये। क्योंकि जीवित रहने के लिये सभी प्राणियों को सर्वाधिक आवश्यकता वायु की हुआ करती है, जो हमारे कार्य-व्यवहार से निरन्तर दूषित होती रहती है और इसे शुद्ध करने का एक ही उपाय है - अग्निहोत्र। इसीलिये हमारे अनुभवी ऋषि-मुनियों ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर यज्ञ सम्बन्धी विस्तृत उल्लेख करते हुए कामनाओं की पूर्ति में इस वैज्ञानिक प्रक्रिया का विश्वसनीय योगदान माना है।

पढ़ा और सुना है कि वैदिककालीन समस्त नगरों-ग्रामों परिवारों में दैनिक हवन तथा समय-समय पर बृहद् यज्ञ हुआ करते थे। कोई निर्धन, रोगी एवं अभाव ग्रस्त नहीं था, कहीं पर भी छीना-झपटी, लूट-खसौट, चोरी नहीं होती थी। उस युग के इतिहास में अतिवृष्टि-अनावृष्टि, भूकम्पादि प्राकृतिक प्रकोपों का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु महाभारत के विनाशकारी युद्ध ने हमारी आदर्श परम्पराओं को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तभी से वेद विरुद्ध मत-मतान्तरों का प्रादुर्भाव हुआ, और सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य अपने कर्तव्य कर्मों से विमुख हो गया।

आज इस भूमण्डल पर इने-गिने परिवारों में ही अग्निहोत्र होता है। मुझे यह लिखते हुए विशेष कष्ट की अनुभूति हो रही है कि सनातनधर्मी कहलाने वाले अनेक महानुभाव बीड़ी-सिगरेट-चिलम-तम्बाकू आदि की धूम से निरन्तर वायु प्रदूषण तो बढ़ाते हैं, किन्तु प्रतिदिन हवन नहीं करते। अर्थात् यज्ञ विहीन व्यक्ति अपने आपको मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम एवं योगीराज भगवान् श्रीकृष्ण का भक्त मानते हैं।

महर्षि दयानन्द की जय बोलने वाले अधिकांश आर्यसमाजी बन्धु भी दैनिक अग्निहोत्र से वञ्चित रहें, यह उचित नहीं है। हमारे अपने कार्यों व्यवहारों तथा शारीरिक विकारों से दूषित हुई वायु को शुद्ध करना हमारा नैतिक दायित्व है, यह कहनेवाले स्वयं यज्ञ न करें, आश्चर्य है। इस समय आर्योंपदेशकों में दैनिकयज्ञ करने वाले नहीं के बराबर हैं, भले ही किसी को बुरा लगे, सत्य यही है।

यज्ञाग्नि के सम्पर्क में आये - सुगन्धित, रोगनाशक, मधुर तथा पुष्टिकारक पदार्थ अति सूक्ष्म होकर अनेक प्राणियों को लाभ पहुँचाते हैं। इस वैज्ञानिक तथ्य से अनभिज्ञ व्यक्तियों के कथनानुसार व्यर्थ ही नष्ट नहीं होते।

चित्रकारी कार्यकाल की अवधि में लगभग २७ वर्षों तक मैं जैन मतानुयायियों के सम्पर्क में रहा। तब कभी-कभी सैद्धान्तिक-चर्चा होती उस समय मैं उनसे कहा करता था कि आपके शरीर से निकले अपानवायु, मल-मूत्र, पसीने आदि से दूषित हुए वायुमण्डल को शुद्ध करने हेतु आप कौनसा प्रकार अपनाते हैं? क्योंकि अग्निहोत्र से तो आपका कोई सम्बन्ध है नहीं।

जीवनदायिनी वायु को दूषित करने से प्राणियों का अहित होता है, इस मान्यता को अस्वीकार कौन करेगा? अतः आपका 'अहिंसा परमोधर्मः' केवल वाणी तक सीमित है। जब तक आप अपने द्वारा किये गये वायु प्रदूषण को स्वयं दूर न करें तब तक पूर्ण अहिंसक नहीं माने जा सकते। हमारे विश्वास के अनुसार समस्त प्राणियों का हितैषी यज्ञकर्ता ही सच्चे अर्थों में अहिंसक होता है। इत्यादि...

लगभग ५० वर्षों से हमारे यहाँ प्रतिदिन प्रातः सायं हवन हो रहा है। अपने चित्रकारी कार्यकाल में मैंने सुसनेर (मध्यप्रदेश) में यजुर्वेद पारायण एवं मदनगंज-किशनगढ़ (घर पर) चतुर्वेद पारायण बहद् यज्ञ कराया था। अग्निहोत्र के प्रति मेरी अटूट श्रद्धा है। यज्ञ करने से मुझे बड़ा लाभ हुआ, यह मुझसे परिचित महानुभाव जानते हैं।

हवन का प्रभाव केवल वायु मण्डल की शुद्धि तक ही सीमित नहीं रहता, इससे यज्ञकर्ता का हृदय भी उदार हो जाता है। सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव उत्पन्न कराने वाला अग्निहोत्र सुख शान्ति में कितना सहायक है? इस प्रश्न का उत्तर है - "यज्ञ करके देखो"...

अग्निहोत्र करने वालों को चाहिये कि वे यज्ञकुण्ड, यज्ञपात्र, यज्ञस्थल एवं समिधाओं की स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखें। चाहे कम से कम मात्रा में उपयोग करें किन्तु विशुद्ध गोघृत तथा अच्छी से अच्छी सामग्री हो, मन्त्र शान्ति से बोलें, अर्थात् हवन पूरी श्रद्धा से किया जावे तो बहुत लाभ होता है। इस मानवीय

कर्तव्य-कर्म का पालन अवश्य होना चाहिये । मैं हृदय से चाहता हूँ कि यह “सुकर्म” प्रत्येक परिवार में हो । घृत के अभाव में केवल सामग्री की ही आहुतियाँ दी जावे, परन्तु यज्ञ से कोई वञ्चित न रहे ।

वेद प्रचार-सुकर्म है

वैदिक विद्वान् कहते हैं कि सृष्टि रचयिता जगदीश्वर से ज्ञान प्राप्त कर ऋषियों ने मानव उत्पत्ति के साथ ही वेद का प्रचार आरम्भ कर दिया, जो महाभारत काल तक इस भूमण्डल पर निरन्तर होता रहा । तत्पश्चात् मत-मतान्तरों का प्रादुर्भाव हुआ और यह सर्व कल्याणकारी कार्य शिथिल होकर कालान्तर में रुक गया, इसे महर्षि दयानन्द ने पुनः प्रारम्भ किया । इत्यादि...

आर्यजन मानते हैं कि वेद अपौरुषेय है, किसी मनुष्य की कृति नहीं । इसका प्रचार दीर्घकाल तक वाणी द्वारा हुआ, और फिर इसे लेखबद्ध किया गया । महर्षि दयानन्द तथा उनके पूर्ववर्ती सभी ऋषियों ने वेद को निष्प्रान्त एवं स्वतःप्रमाण माना है । वेद में मानवमात्र के लिये उपदेश निर्देश तथा सन्देश है, इतिहास नहीं । यह सृष्टिक्रम तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों के सर्वथा अनुकूल, बुद्धि, विज्ञान, तर्क, युक्ति, न्याय संगत ज्ञान है । मनुष्यों के लिये तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त आवश्यक सभी जानकारीयाँ बीज रूप से केवल वेद में ही विद्यमान हैं, अन्य किसी और पुस्तक में नहीं ।

वेद किसी काल क्षेत्र अथवा वर्ग विशेष के लिये नहीं, यह तो सार्वकालिक, सार्वभौम एवं मानवमात्र की सम्पदा है । श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि महापुरुष वेदानुयायी थे, उन्होंने वेद विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया । महर्षि दयानन्द के शब्दों में ब्रह्मा से जैमिनि ऋषि पर्यन्त इस भूमण्डल पर कभी वेद से विपरीत मान्यताओं का प्रचार नहीं हुआ ।

पापी दुर्योधन ने भगवान् श्रीकृष्ण की शुभ सम्मति के प्रति असहमति व्यक्त कर सम्पूर्ण मानव समुदाय का बहुत अहित कर डाला । कौरव पाण्डवों के विनाशकारी युद्ध ने संसार में सर्वत्र अविद्या अन्धकार फैला दिया । जिसके परिणामस्वरूप सत्य का स्थान कल्पनाओं ने ले लिया और धर्म अध्यात्म कर्मकाण्ड आदि से सम्बन्धित मनमानी मान्यताओं का प्रचार आरम्भ हुआ जो अब तक होता आ रहा है । वेद विरुद्ध मतों ने जो भ्रान्तियाँ फैलाई उनमें से एक है-

अवतारवाद

पौराणिक मतानुयायी यह मानते हैं कि धर्म की रक्षा के लिये ईश्वर का अवतार होता है । अर्थात् जब अधर्म एवं दुर्जनों का अत्याचार बढ़ता है तब ईश्वर

आया करता है। इस मान्यता से यह प्रमाणित हो जाता है कि भूमण्डल पर भारतवर्ष ही ऐसा राष्ट्र है जहाँ अनेक बार धर्म का हास तथा दुष्टों का प्रादुर्भाव हुआ, क्योंकि आदि सृष्टि से अब तक पुराणों में लिखे अनुसार ईश्वर विभिन्न रूपों में २३ बार यहीं आया, अन्य किसी भी देश में नहीं गया।

पाठक विचार करें - संसार को सुख-शान्ति एवं कल्याण का मार्ग बताने वाले तत्त्ववेत्ता ऋषि-मुनियों की पावन जन्मभूमि का इससे अधिक अपमान और क्या हो सकता है ?...

वेदप्रचार के अभाव में - सर्वव्यापक, अचल ईश्वर एकदेशी तथा आने जाने वाला हो गया। श्री पाण्डुरंग जी शास्त्री को अपना पथ प्रदर्शक मानने वाली (अध्यात्म सम्बन्धी चर्चा करने आई) बहिनों से अहमदाबाद में मैंने जब यह पूछा कि सर्वव्यापक ईश्वर कहाँ से आता है ? तो उन्होंने कहा - हम 'दादा' (श्री पाण्डुरंग शास्त्री) जी से पूछकर बतायेंगी... लगभग १६ वर्ष हो गये, उन्होंने अभी तक मुझे कोई उत्तर नहीं दिया।

अवतारवाद की मान्यता से हमारे राष्ट्र का कितना अहित हुआ, यह मध्यकालीन इतिहास पढ़कर जाना जा सकता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से ईश्वरावतार की समीक्षा न करके मैं तो केवल यह बताना चाहता हूँ कि इस वेद विरुद्ध (सर्वथा काल्पनिक) विश्वास से मानव समुदाय को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अध्यात्म सम्बन्धी फैलायी गयी यह भ्रान्ति वेदप्रचाररूपी 'सुकर्म' से ही दूर होगी, अन्य कोई उपाय नहीं है। इसी प्रकार एक भ्रान्ति है -

ब्रह्म और जीव की एकता

“अहं ब्रह्मास्मि” - “तत्त्वमसि” आदि उपनिषदों के वाक्यों का वास्तविक आशय नहीं समझने वाले वेदविहीन व्यक्ति जीवात्माओं की सत्ता का निषेध कर, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, यह मान बैठे।

मनीषी पाठक ध्यान दें - अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ है - मैं ब्रह्म हूँ। तो यह कौन किस को कह रहा है कि मैं ब्रह्म हूँ ? क्योंकि सुनने वाला अन्य कोई है ही नहीं। हम देखते हैं - सुनने वालों के सामने बोला जाता है, अपने आप तो पागल ही बड़बड़ाया करते हैं।

ऋषियों के मन्तव्यों को जहाँ तक मैं समझ पाया उसके अनुसार ब्रह्म सर्वशक्तिमान सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, जन्म-मरण के बन्धन से रहित नित्यानन्द स्वरूप है। तो फिर जिन्हें सांसारिक सुख-दुःख की अनुभूति होती है, वे कौन हैं ? इस प्रश्न का सन्तोषप्रद उत्तर 'ब्रह्म-जीव की एकता' पर विश्वास रखने वाले महानुभाव अब तक नहीं दे पाये।

आश्चर्य है ! व्यवहार में भिन्न सत्ता स्वीकारने वाले व्यक्ति ब्रह्म और जीव को एक बताते हैं । मैं इस अवैदिक मान्यता की भी सैद्धान्तिक दृष्टि से कोई समीक्षा नहीं कर रहा । मुझे तो मात्र इतना ही बताना है कि महाभारत काल के पश्चात् प्रचलित हुए असत मतों ने मानव मस्तिष्क को कितना कुण्ठित एवं विकृत कर दिया । विश्वास कीजिये सर्वसाधारण को ईश्वर-जीव-प्रकृति सम्बन्धी यथार्थ जानकारी प्राप्त कराने में अत्यन्त सहायक वेदप्रचार 'सुकर्म' है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

ब्रह्म के अतिरिक्त कोई है ही नहीं, यदि यह मान लिया जावे तो फिर स्तुति, प्रार्थना, उपासना, यज्ञ, दान, सेवा, कर्तव्याकर्तव्य, पुण्य-पाप, पुनर्जन्म, मोक्ष बन्धन, सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय आदि से सम्बन्धित चर्चाएँ व्यर्थ हैं । ऋषियों के परिश्रम को निरर्थक सिद्ध करने वाले इस अवैदिक सिद्धान्त से सम्बद्ध महानुभाव अपनी भूल का सुधार करें, यह मैं विनम्रता पूर्वक लिख रहा हूँ ।

ईश्वर के प्रति अविश्वास भी एक भ्रान्ति है

बौद्ध-जैन मत एवं कबीर पन्थादि से सम्बन्धित व्यक्ति कहते हैं कि सृष्टि रचयिता तथा जीवात्माओं को कर्मों का यथावत् फल प्रदान करने वाले ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है । इस वेद विरुद्ध मान्यता ने भी मानव समुदाय की बहुत बड़ी हानि की । मैं ऐसा मानता हूँ, और मुझे यह भी विश्वास है कि ईश्वर से विमुख होकर अनेक मनुष्य परमानन्द की प्राप्ति से वञ्चित रहे तथा रह रहे हैं ।

वैदिक परम्परा में जगन्नियन्ता जगदीश्वर के अस्तित्व पर आस्था रखने वाले आस्तिक और जो यह कहते हैं कि संसार की रचना करने वाला कोई नहीं, वे नास्तिक माने जाते हैं, तथा ईश्वर विश्वासियों के कथनानुसार नास्तिकता मनुष्य के लिये बहुत बड़ा अभिशाप है ।

वेदप्रचार के अभाव में प्रचलित हुए अनेक मत-पन्थों ने मनुष्यों को नास्तिक बनाकर अपनी अदूरदर्शिता का परिचय दिया, यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है । मध्यकालीन इतिहास को पढ़ने से ज्ञात होता है भगवान् बुद्ध एवं भगवान् महावीर आदि को वेद प्रतिपादित ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान नहीं था, इसीलिये उन्होंने अध्यात्म सम्बन्धी अन्यथा मानस बना लिया । उनके समय में अपने आपको ईश्वर विश्वासी मानने वाले वाममार्गियों का वर्चस्व था, जो यज्ञ के नाम पर निरपराध प्राणियों को मारने जैसा कुकर्म करते और उसे ईश्वरीय आदेश का पालन बताते थे । गउओं, अश्वों, मनुष्यों आदि का निर्दयता पूर्वक वध करवाने वाला तथाकथित ईश्वर-करुणा प्रधान हृदय वाले भगवान् बुद्ध एवं भगवान् महावीर को मान्य नहीं हुआ, अतः वे अनीश्वरवादी हो गये ।

इसी प्रकार से अपने समय के सुप्रसिद्ध मनीषी सन्त कबीरदास जी ने पौराणिक कल्पना पर आधारित ईश्वर का अस्तित्व नहीं स्वीकारा, क्योंकि पुराणों में ईश्वर सम्बन्धी जो वर्णन है उससे संसार का कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति सहमत नहीं हो सकता ।

सन्त कबीरदास जी का हृदय बहुत अच्छा था, उनकी सूझ विलक्षण थी, किन्तु उन्हें संस्कृत भाषा एवं वैदिक मान्यताओं का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण ईश्वर के प्रति अविश्वास हो गया ।

इस विशाल ब्रह्माण्ड के सृजन, नियम, नियन्त्रण आदि को देखकर सरजनहार-नियामक-नियन्ता की सत्ता पर अविश्वास करना उचित नहीं है ।

ईश्वर ज्ञानेन्द्रियों से नहीं जाना जाता, अतः विवादास्पद बना हुआ है विश्वास कीजिये - नास्तिक मतों द्वारा स्वीकार्य अध्यात्म सम्बन्धी मान्यताएँ मात्र कल्पनाओं पर आधारित हैं, क्योंकि ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानन्द पर्यन्त सभी ऋषि-मुनियों ने ईश्वर के अस्तित्व का समर्थन किया है । इसलिये अनीश्वरवादियों के मन-माने कथन को प्रमाणिक नहीं माना जा सकता इत्यादि... । एक भ्रान्ति है-

फलित-ज्योतिष

इसके जाल में संसार के अधिकांश व्यक्ति फँसे हुए हैं । यहाँ तक कि जिनके हाथों में राष्ट्र की बागडोर होती है, वे भी इस भ्रान्ति से ग्रसित हैं । लगभग सभी समाचार पत्रों में फलित ज्योतिष को स्थान प्राप्त है ।

आश्चर्य तो यह है कि प्रत्यक्ष में घट रही घटनाओं को देखकर भी मनुष्य इस अन्धविश्वास को नहीं त्यागते । मैं जानना चाहता हूँ कि सुप्रसिद्ध ज्योतिषियों के परिवारों में कलह-अशान्ति क्यों रहती है ? उनकी युवा पुत्रियाँ विधवा क्यों हो जाती है ? ... भोपाल गैस काण्ड एवं श्री सञ्जय गाँधी जी, श्रीमती इन्दिरा गाँधी जी, श्री राजीव गाँधी जी, आदि की अकाल मृत्यु का योग संसार के किसी भी ज्योतिषी ने क्यों नहीं बताया ? इत्यादि...

मैं ऐसे अनेक व्यक्तियों को जानता हूँ जिन्होंने ज्योतिषियों की हर बात मानी, और अपने कार्यों में सफलता प्राप्त नहीं की । वेद समर्थित कर्म फल भोग की अनिवार्यता के विरुद्ध कल्पित ज्योतिष पर विश्वास कर मानव समुदाय ने अपना बहुत अहित किया, यह शत-प्रतिशत सत्य है ।

इतिहास साक्षी है - हमारे भारतवर्ष की परतन्त्रता के अन्य अनेक प्रमुख कारणों में एक कारण फलित ज्योतिष का विश्वास भी है । अतः इस अनिष्टकारी

मान्यता का सभी मनुष्यों को तत्काल परित्याग कर देना चाहिये, जिससे कि पुरुषार्थ के प्रति कोई आशंकित न रहे ।

वेद विरुद्ध मत-मतान्तरों द्वारा उत्पन्न की गई सभी भ्रान्तियों का उल्लेख तो इस लघुपुस्तिका में सम्भव नहीं है । फिर भी आवश्यक मानकर मैं जिसकी ओर आप पाठकों का ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ वह है-

भूत-प्रेत का भ्रम

समस्त वैदिक विद्वानों एवं वैज्ञानिकों के कथनानुसार भूत-प्रेत मात्र कल्पना है, इनका कोई अस्तित्व नहीं । फिर भी अनेक मत इनकी सत्ता को मानते और सत्य शाश्वत पदार्थ ईश्वर-जीव-प्रकृति के प्रति अपना अविश्वास प्रकट करते हैं । अर्थात् अद्वैतवादी जीव तथा प्रकृति एवं बौद्ध जैनादि मत ईश्वर की सत्ता को नहीं स्वीकारते । इससे अधिक ना समझी और क्या हो सकती है ।

भ्रमित व्यक्ति कहते -भूत-प्रेत रात में ही दिखाई देते हैं । इस मान्यता से यह स्पष्ट हो जाता है कि भूत-प्रेतादि का सम्बन्ध अन्धकार(अज्ञान) के साथ है । मुझे यह लिखते हुए विशेष कष्ट की अनुभूति हो रही है कि जिन्होंने दुष्ट-दुराचारियों को सबक सिखाया उनके वंशज मुद्दों से भयभीत रहते हैं ।

मृत्यु के पश्चात् शरीरों की तो भस्म अथवा मिट्टी हो जाती एवं आत्माएँ अपने कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था के अन्तर्गत किन्हीं योनियों को प्राप्त कर लेती, फिर भूत-प्रेत कौन बनते हैं ? सम्बन्धित महानुभावों को इतना विचार तो अवश्य करना चाहिये ।

भूत-प्रेत का भय केवल तत्सम्बन्धी संस्कारों के दुष्प्रभाव तथा मानसिक दुर्बलता का परिणाम है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं । मैं यह और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि आयुर्वेदाचार्य भूत व्याधि को मानसिक उन्माद मानते हैं, किसी आत्मा का उत्पात नहीं ।

ये जितनी भी भ्रान्तियाँ फैली इनका मूल कारण सदज्ञान का अभाव है । इसीलिये मैं वेदप्रचार को 'सुकर्म' मानता हूँ । मैंने जिन भ्रान्तियों का अति संक्षेप में वर्णन किया, आप पाठकवृन्द उन से सम्बन्धित विचार अवश्य करेंगे इस विश्वास के साथ अब जिस 'सुकर्म' का मैं उल्लेख कर रहा हूँ, उसे कहते हैं-

वैदिक सत्संग का आयोजन

इस भूमण्डल पर सर्वाधिक सत्संग भारतवर्ष में ही होते हैं । यहाँ ऐसा कोई नगर-ग्राम नहीं जहाँ सत्संग प्रेमी न रहते हों, किन्तु वास्तव में सत्संग कहते किसे हैं ? यह अधिकांश व्यक्ति नहीं जानते ।

विद्वान् बताते हैं कि सत् एवं संग के योग से 'सत्संग' शब्द बना है । सत् कहते हैं सच्चे और अच्छे को तथा संग का अर्थ है साथ । अर्थात् जो सत्य और भद्र से युक्त हो वह सत्संग कहलाता है । यदि और स्पष्ट करूँ तो जिसके द्वारा सत्य समर्थित जानकारीयाँ तथा सुशिक्षा प्राप्त की जा सके उसका नाम है 'सत्संग' ।

किसी स्थान पर अनेक स्त्री-पुरुष एकत्रित होकर कुछ गाले बजालें अथवा किसी से कुछ भी सुनलें उसे सत्संग नहीं कहते । ऐसे तथाकथित सत्संगों में फिल्मी धुनों पर आधारित श्रीकृष्ण-राधा, शिव-पार्वती, आदि के नाम से गायी गई तुक बन्दियाँ मैंने अपने कानों से सुनी हैं ।

मैं ऐसे सहस्रों व्यक्तियों को भी जानता हूँ जो मादक द्रव्यों तथा अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करते, अश्लील चल-चित्र देखते, असत्य बोलते और अपने आपको सत्संगी मानते हैं ।

विश्वास कीजिये जहाँ सृष्टिक्रम और प्रत्यक्षादि प्रमाणों के विरुद्ध विचार व्यक्त किये जाते एवं कोतुहलप्रिय व्यक्ति तथाकथित भजनों के नाम पर शोर मचाते वहाँ सत्संग नहीं हुआ करता । ऐसे आयोजनों में अपने समय और धन को व्यर्थ ही नष्ट करना कौनसी बुद्धिमानी है ? पाठक विचार करें ।

अवैदिक मतों द्वारा प्रचारित असत्य मान्यताओं से हुई और हो रही हानियों का ज्ञान कराके, मानवमात्र को सत्य सनातन कल्याणकारी वेद-मार्ग बताने वाला वैदिक-सत्संग का आयोजन मेरी दृष्टि में 'सुकर्म' है । इसके माध्यम से विद्वानों द्वारा वेद प्रतिपादित सिद्धान्तों की जानकारी दी जाती है । बुद्धि, विज्ञान, तर्क, युक्ति, न्याय संगत उपयोगी विचार व्यक्त किये जाते । ईश्वर-जीव-प्रकृति, धर्म आदि का यथार्थ स्वरूप एवं मानवीय कर्तव्यों पश्च महायज्ञों का महत्व बताया जाता है । इत्यादि... अतः वैदिक-सत्संग के आयोजन में प्रत्येक मनुष्य को तन-मन-धन से सहयोग अवश्य करना चाहिए ।

आप्त विद्वानों का सम्मान-सुकर्म है

जिनका आचरण विशुद्ध और ज्ञान अशुद्ध तथा आचरण निकृष्ट एवं ज्ञान उत्कृष्ट हो, इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों से निर्दोष आचरण और निर्भ्रान्त ज्ञान वाले व्यक्ति उत्तम तथा विश्वसनीय होते हैं ।

वैदिककाल में आप्त विद्वान् बहुत थे, किन्तु मध्ययुग से इनका अभाव हो गया । इतिहास से यह जानकारी प्राप्त होती है कि महाभारतकाल के पश्चात् ऐसे अनेक व्यक्ति हुए जो आचरण से पवित्र थे, और सन्त कहलाये, किन्तु उन्होंने

अपनी अज्ञानता के कारण संसार को अविद्या अन्धकार में धकेल दिया । उनके नाम पर मत-पन्थ चले, मानव समुदाय विभिन्न भागों में विभक्त हो गया ।

ऐसे व्यक्ति भी हुए जिन्होंने अपने स्वाध्याय और चिन्तन के बल पर अधिकाधिक ज्ञान का अर्जन कर अनेक मनुष्यों को शास्त्रों का मर्म तो समझाया, परन्तु आचरणभ्रष्ट होने के कारण कहीं सम्मान नहीं पाया ।

जिनके मन-वचन कर्म में समानता होती है, जो अपने किन्हीं स्वार्थों की सिद्धि के लिये किसी को भ्रमित नहीं करते एवं तीनों प्रकार की ऐषणाओं से पृथक् रहते, ईश्वरोपासना में मन लगाते, वेदादिसत्यशास्त्रों के मर्म को जानते वे आप्त पुरुष कहलाते हैं, और उनका सम्मान करना निश्चय ही 'सुकर्म' है ।

वर्तमान में प्रायः 'पोथी के पण्डित ही यत्र-तत्र दिखाई देते हैं । उनकी कथनी का सम्बन्ध करनी से नहीं होता, अर्थात् उनके ज्ञान और आचरण में समानता नहीं है ।

जो विद्या को बेचते हैं, वे विद्वान् भी आप्तकोटि के नहीं माने जाते, किन्तु कर्तव्य भावना से मानवता की सेवा में निशदिन संलग्न रहने वालों को हर प्रकार से उत्साहित एवं आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त करना हमारा धर्म है ।

सेवा-सुकर्म है

दीन-दुःखियों की सेवा करना समर्थ मनुष्यों का नैतिक दायित्व है । इस समय समाज, राष्ट्र संसार में अभावग्रस्त व्यक्ति बहुत रहते हैं । उनकी दुरवस्था पर सभी सक्षम महानुभावों को विशेष ध्यान देना चाहिये ।

किसी की तात्कालिक आवश्यकता पूरी करनी ही पर्याप्त नहीं उसको स्वावलम्बी बनाना उसकी सर्वोत्तम सेवा है । अर्थात् भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, नंगे को वस्त्र, रोगी को ओषधि देने से कहीं अधिक पुण्य तब होता है जब ऐसे उपाय किये जावें कि कोई भूखा, प्यासा, नंगा, रोगी रहे ही नहीं ।

वास्तविक सेवा के अभाव में यह दाताओं का देश हमारा भारतवर्ष भिखारियों से भर गया । वर्तमान में सेवा के निम्न प्रकार अपनाये जा सकते हैं ।

आत्मीय भाव से समझाकर किसी के दुर्व्यसन छुड़वाना । अपने सम्पर्क में आने वालों को स्वास्थ्य के नियम बताकर रोगों से बचाना । कुपथ गामियों को सुमार्ग पर लाना । मत-मतान्तरो से ग्रसित मनुष्यों को धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराना । बेरोजगारों को धन्धे से लगाना एवं दुखियों को धैर्य बँधाना, आदि-आदि...

बिना दहेज का विवाह सुकर्म है

शीर्षक पढ़कर पाठक चौंके नहीं, मैं लिख चुका हूँ 'सुकर्म सुखदायी होता है।' यदि कोई चाहे तो जिनका आर्थिक स्तर सामान्य है, उन कुलीन परिवारों की अविवाहिता युवा पुत्रियों के पिताओं से पूछकर देखलें, वे यही कहेंगे कि बिना दहेज का विवाह सुकर्म है।

मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त कष्ट की अनुभूति हो रही है कि जहाँ प्रतिवर्ष दो बार नो-नो दिन तक तथाकथित माता पूजी जाती है, वहाँ की स्त्रियाँ दहेज दानव से भयभीत होकर अपनी गर्भस्थ कन्याओं को मरवाती हैं और यह भ्रूणहत्या वाला महापाप परधन के भूखे भेड़िये करवाते हैं। अतः इस कुकृत्य को रूकवाने के लिये साहसी युवकों को आगे आने की आवश्यकता है।

चाहे कोई भले ही बुरा माने जो व्यक्ति दहेज में दिये और लिये जाने वाले सामान का प्रदर्शन करते हैं वे समाज के प्रबल शत्रु हैं। ऐसे व्यक्तियों का बहिष्कार करना चाहिये, जिससे कि दूषित परम्परा को बल न मिलने पावे।

यह सर्व विदित है कि दहेज की माँग पूरी न कर पाने के परिणामस्वरूप सुयोग्य कन्याएँ या तो अविवाहिता रह जाती, या फिर अयोग्य घर-वर प्राप्त कर जीवन भर दुःखी रहती हैं। मन माना दहेज न मिलने के कारण बहुओं को जीवित जलाये जाने वाली घटनाओं से आज कोई अपरिचित नहीं है। इसीलिये मैं बिना दहेज के विवाह को सुकर्म मानता हूँ और चाहता हूँ कि पिता स्वेच्छा से अपनी कन्याओं को जो दे उसका प्रदर्शन न किया जावे। विवाहों में अधिक भीड़-भड़का तथा अपव्यय न हो। इत्यादि नियमों का पालन दृढ़ता के साथ होना चाहिये, तब ही यह पाप मिट सकेगा।

युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने जहाँ धर्म अध्यात्म एवं कर्मकाण्ड आदि से सम्बन्धित अवैदिक मान्यताओं का निराकरण करने हेतु हमें कहा, वहाँ सामाजिक कुरीतियों को मिटाने के लिये भी आदेश दिया है। अतः अति संक्षेप से मैंने आज की ज्वलन्त समस्या 'दहेज' का उल्लेख किया, मैं चाहता हूँ गर्भजल के परीक्षण पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगे, गर्भपात वैधानिक अपराध घोषित कर दिया जावे तथा कन्या वधवाले पाप की जड़ दहेज प्रथा का अन्त हो।

सुकर्म तो और भी बहुत हैं, परन्तु इस लघु पुस्तिका में अब और स्थान न होने से अपनी लेखनी को मैं यही विराम देता हूँ-

लेखक



सर्वकल्याणकारी सत्य सनातन वैदिकधर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान



श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट

श्रीमती पूराबहिन रूपसीभाई पोपट

प्राप्त जानकारी के अनुसार श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट का जन्म माघ शुक्ल पञ्चमी विक्रम संवत् १९४८ को नगर पारकर जिला थर पारकर के एक सुप्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ । आपकी आजीविका का साधन व्यापार व्यावसाय रहा । आप आरम्भ से ही गो सेवक और परोपकार प्रिय रहे । आपने स्वतंत्रता आन्दोलन में भी अच्छी भूमिका निभाई । आप सदैव प्रसन्नचित रहते थे ।

आर्यसमाज नगर पारकर के वार्षिकोत्सव में हिमाचल प्रदेश से पधारे श्री पूज्य स्वामी कृष्णानन्द जी के प्रवचनों से प्रभावित होकर आप विक्रम संवत् १८७६ में आर्यसमाज से जुड़े, और वैदिकधर्म प्रचार-प्रसार के कार्य में तन मन धन से सहयोग करने लग गये ।

भारत विभाजन के पश्चात् आप विक्रम संवत् २००४ को गुजरात प्रान्त के बनासकांठान्तर्गत भाभर नामक कस्बे में सपरिवार आकार बसे, और वहाँ विक्रम संवत् २०१५ को आर्यसमाज की हुई स्थापना में आपने अपना पूर्ण योगदान दिया । अपने सरल स्वभाव, आत्मीय व्यवहार एवं सेवाभाव से आपने बहुत यश पाया । अपने दोनों होनहार सुपुत्रों सर्व श्री लवजीभाई एवं चुनीलालभाई तथा अपनी धर्मपत्नी श्रीमती पूराबहिन को सदैव वेदपथ पर चलते रहने की सत्प्रेरणा प्रदान करते हुए विक्रम संवत् २०१८ को आपने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया ।

श्रीमती पूराबहिन रूपसीभाई पोपट का जीवन सदैव सरल सादगी सेवाभाव एवं परिश्रम प्रिय रहा । आपने अपने श्री पूज्य पतिदेव की सर्व सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखा, और परिवार-कुटुम्ब की समृद्धि में अपना अनुभूत योगदान दिया ।

श्रीमती पूराबहिन ने सम्बन्धित नारी समुदाय के लिये एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करके विक्रम संवत् २०३८ को परलोक गमन किया । ऐसे वैदिक धर्मानुयायी दम्पति को हमारा शत शत नमन -

लेखक

प्रेषक
कमलेशकुमार
आर्य अग्निहोत्री
आर्यसमाज मंदिर,
देवलाली बाजार,
कुबेरनगर,
अहमदाबाद
(गुजरात)

PRINTED BOOK

प्राप्त कर्ता :

